अध्यात्म पथ स्वयं को समग्र रूप से जानने की, उस परमसत्ता से जुड़ने की तथा आत्म परिष्कार एवं आत्म विस्तार की प्रक्रिया है। कितने ही लोग इस पथ पर चल पड़ते हैं। बड़े उत्साह के साथ शुरुआत करते हैं। फिर रास्ते में ही कुछ हिम्मत हार बैठते हैं। कुछ सांसारिक राग-रंग को ही सब कुछ मान बैठते हैं। कुछ संकीर्ण स्वार्थ-अहंकार के धंधे में उलझकर, जीवन के आदर्श से समझौता कर बैठते हैं। कुछ आलस्य-प्रमाद में भ्रमित होकर बहुमूल्य जीवन को यों ही बर्बाद कर देते हैं। इसमें प्रायः इस समझ का अभाव मुख्य कारक रहता है कि अध्यात्म चेतना के परिष्कार का विज्ञान है, जिसमें जन्म-जन्मांतरों से मलिन चित्त एवं भ्रमित मन के साथ वास्ता पड़ रहा होता है। अचेतन मन के महासागर को पार करते हुए चेतना के शिखर का आरोहण करना होता है। आगे बढ़ना होता है।

परमसत्ता से जुड़ने की प्रक्रिया है अध्यात्म

निःसंदेह मार्ग कठिन है। दुरूह है। पूर्व में कृत कर्मराशि जब पहाड़ जैसा चट्टानी अवरोध बनकर राह में खड़ी हो जाती है, तो साधक की आस्था डांवाडोल हो जाती है। सस्ती पूजा-पत्री, भोग-चढ़ावे व चिह्न पूजा के सहारे धर्म-आध्यात्म के पथ पर बहुत कुछ बटोरने के फेर में चला पथिक मार्ग में ही धराशाई हो जाता है। यहां तक कि नास्तिक हो जाता है और भगवान तथा समर्थ गुरु तक को कोसने लगता है। जबकि धर्म-अध्यात्म पथ का अपना विधान है, विज्ञान है। इसकी थोड़ी सी भी समझ साधक को राजमार्ग से विचलित नहीं होने देती। वह पगडंडियों में नहीं उलझता। धर्म-अध्यात्म की शुरुआत धार्मिकता की प्राथमिक कक्षा से होती है, जिसमें पूजा-पाठ से लेकर कर्मकांड का सहारा लिया जाता है, लेकिन स्वाध्याय एवं आत्मचिंतन के साथ साधक की समझ भी सूक्ष्म होती जाती है। आस्तिकता के भाव के जाग्रत के साथ, श्रद्धा-निष्ठा परिपक्व होती है। इसी तैयारी के बाद अध्यात्म की कक्षा में प्रवेश मिलता है।

डॉ. प्रदीप द्विवेदी 'रमण'
आध्यात्मिक लेखक

आश्चर्य नहीं कि अध्यात्म पथ पर चलने वाले ऋषियों ने इसे छुरे की धार पर चलने के समान दुस्साध्य बताया है, लेकिन इस विकट पथ का वरण करने वाले मुमुक्षु पथिकों ने भी कब हार मानी है। मार्ग की दुरूहता को जानते हुए भी अंतस की पुकार के बल पर वे हर युग में इस पथ का संधान करते रहे हैं। किसी समर्थ के अवलंबन के साथ अपार धैर्य, अनंत श्रद्धा और अनवरत प्रयास के साथ अभीष्ट को सिद्ध करते रहे हैं। निःसंदेह समर्थगुरु (पूर्णगुरु) का अवलंबन कार्य को और सरल बना देता है। हमारा परम सौभाग्य है कि अवतारी गुरुसत्ता का सानिध्य हमें मिला। हमारे गुरुवर के सिद्धसूत्रों के साथ अध्यात्म का व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक स्वरुप हमारे लिए सहज सुलभ है, लेकिन इनको जीवन में वरण करने, धारण करने के लिए साहस, निष्ठा एवं तैयारी की न्यूनतम मांग है। आखिर हर मांग अपनी कीमत मांगता है, जो चीज जितनी कीमती होती है, उसका उतना ही मूल्य भी चुकाना होता है। एक किसान, व्यापारी व विद्यार्थी तन-मन व धन की सारी पूंजी झोंक देता है। तब कहीं जाकर समस्त सुख-सुविधाओं को त्यागते हुए एकांतिक प्रयास एवं निष्ठा के बल पर अभीष्ट मंजिल तक पहुंचता है। इसी प्रकार आध्यात्म पथ भी अपनी कीमत मांगता है, जिसमें चित्त-चेतना की शुद्धि एवं परिष्कार मुख्य है। स्वयं को गलाकर-मिटाकर सब कुछ पाने की कला अध्यात्म है। इसमें सबसे पहले चित्त का परिष्कार करना होता है। इसी के साथ जन्मों से अज्ञान के परदे में ढका आत्मज्ञान का सूर्य प्रकाशित होता है और अपने ईश्वरीय अस्तित्व का बोध कराता है। वैसे तो समर्थगुरु (पूर्णगुरु) एवं परमात्मा की कृपा तो सदा ही उनकी सभी संतानों पर अनवरत रुपों में बरसती रहती है। इसको ग्रहण करने व धारण करने की क्षमता का अभाव ही मुख्य कारण है कि अधिकांशतया जीवन इनसे रीता रह जाता है। जिस मात्रा में साधक-शिष्य इसको धारण कर पाता है, उसी अनुपात में उसका आत्मिक विकास होता है। अध्यात्म विज्ञान का कार्य अंततः जीवन का कायाकल्प है। मनुष्य में देवत्व का उदय है। यह उसकी अंतर्निहित दिव्य संभावनाओं व क्षमताओं का जागरण एवं विकास है।

आत्मकल्याण के साथ लोक-कल्याण

चित्त के प्रक्षालन के साथ इसका परिष्कार प्रारंभ होता है, जो स्वयं में समयसाध्य एवं कष्टसाध्य प्रक्रिया है। अपार धैर्य, अटूट श्रद्धा एवं निरंतर प्रयास के साथ यह कार्य संपन्न होता है। बार-बार असफलता के बाद भी साधक हिम्मत नहीं हारता और बार-बार प्रयास करता है। हजार असफलताओं के बाद हजार बार प्रयास करने का जीवट और हर हार के बाद पुनः उठकर आगे बढ़ने का अदम्य साहस अध्यात्म पथ को परिभाषित करता है। अध्यात्म पथ पर अभीष्ट को उपलब्ध सभी साधकों के जीवन दृष्टांत इसी सत्य की गवाही देते हैं। परमपूज्य गुरुदेव ने इसके निमित्त आत्मनिरीक्षण, आत्मसमीक्षा, आत्मसुधार व आत्मनिर्माण की प्रक्रिया का प्रतिपादन किया है। दैनिक जीवन में आत्मबोध से लेकर तत्वबोध की व्यावहारिक साधना को बताया है, जिसमें संयम, स्वाध्याय और सेवा के साथ उपासना, साधना, आराधना की त्रिवेणी में अवगाहन करना पड़ता हैं। परमपूज्य गुरुदेव का यह मार्गदर्शन साधक को अपनी स्थिति के अनुरूप सीखने को प्रेरित करता है और देर-सवेर आध्यात्म पथ पर चलते हुए आत्मकल्याण के साथ लोक-कल्याण के महान उद्देश्य को पूर्ण करता है।

गुरुदेव व दैवी कृपा साथ रहते हुए भी साधक को एकाकी ही इस पथ को पार करना होता है। अपनी अंतरात्मा की पुकार पर आध्यात्म पथ पर आरूढ़ साधक इस मार्ग का सहर्ष वरण भी करता है। इसके लिए पथ के काटों की चिंता नहीं करनी। लोग क्या कहते हैं और क्या करते हैं, इसकी चिंता कौन करे? गुरुकृपा से अपनी आत्मा ही मार्गदर्शन के लिए पर्याप्त है। लोग अंधरे में भटकते हैं। भटकते रहें। हम अपने विवेक के प्रकाश का अवलंबन कर स्वतः ही आगे बढ़ेंगे। कौन विरोध करता है, कौन समर्थन इसकी गणना क्या करनी हमें? अपनी अंतरात्मा, अपना साहस अपने साथ है और हम वही करेंगे, जो करना अपने जैसे सजग साधकों के लिए उचित और उपयुक्त है।

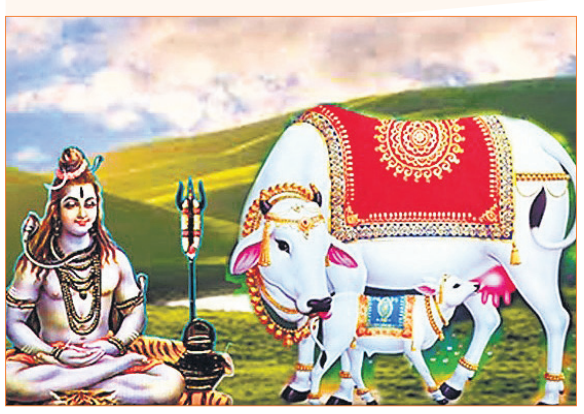

पौराणिक कथा

वृषभध्वज और गौ माता

महाभारत अनुशासन पर्व में वृषभ ध्वज की कथा आती है। एक बार गौ माता सुरभि का बछड़ा दूध पी रहा था। दूध पीते हुए बछड़े के मुख पर दूध की झाग लग गई। वही झाग हवा से उड़कर भगवान शंकर के मस्तक पर जा गिरी। ऐसा होने पर भगवान शिव कुछ क्रोधित हो गए। उस समय प्रजापति जी ने भगवान शंकर से कहा, "हे प्रभु! आपके मस्तक पर, जो दूध का छींटा पड़ा है। वह अमृत है। बछड़ों के पीने से गाय का दूध जूठा नहीं होता। जैसे अमृत का संग्रह करके चंद्रमा उसे बरसा देता है, वैसे ही रोहणी गायें भी अमृत से उत्पन्न दूध को बरसाती हैं। जैसे वायु, अग्नि, सुवर्ण, समुंद्र और देवताओं का पिया हुआ अमृत, कभी जूठे नहीं होते, वैसे ही बछड़ों को पिलाती हुई गौ भी कभी दूषित नहीं होती। ये गौमाता अपने दूध-घी से समस्त जगत का पोषण करती हैं। सभी लोग इन गौओं के अमृतमय पवित्र दूध रुपी ऐश्वर्य की इच्छा करते हैं।" तत्पश्चात प्रजापति जी ने महादेव जीको बहुत सी गौ और एक बैल दिया। इस पर शिवजी ने प्रसन्न होकर वृषभ अर्थात बैल को अपना वाहन बनाया और अपनी ध्वजा को उसी वृषभ के चिह्न से सुशोभित किया। इसी से उनका नाम 'वृषभ ध्वज' पड़ा। फिर देवताओं ने महादेव जी को पशुओं का स्वामी बना दिया और गौओं के बीच में उनका नाम 'वृषांक' रखा गया।

-फीचर डेस्क

संस्कार: आध्यात्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यबोध

'संस्कार' मात्र धार्मिक कर्मकांड ही नहीं अपितु मानव जीवन के सर्वांगीण विकास का आधार है। यह मानव जीवन के सामाजिक, धार्मिक, नैतिक एवं शैक्षिक मूल्यों को एक दिशा प्रदान करता है, जिसके आधार पर व्यक्ति दैहिक एवं भौतिक विकास के साथ ही सुव्यवस्थित एवं सुसंस्कृत जीवनयापन करता है। संस्कारों का विधान अलौकिक पृष्ठभूमि में किया गया है तथा इनकी उत्पत्ति में मानवीय प्रवृत्तियों का विशेष येगदान माना गया है, जिनका आधार आध्यात्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यबोध है।

डॉ. रज्जन कुमार
सेवानिवृत्त प्रोफेसर

संस्कार अपनी प्रकृति के अनुसार पूर्वभव, वर्तमान जीवन एवं मृत्यु के पश्चात् भी गतिशील रहते हैं। संस्कृत साहित्य में मानव जीवन के इन विविध क्रमों से संबंधित संस्कार के कई प्रकार मिल जाते हैं। यद्यपि संस्कारों के भेद एवं उनके नामों के लेकर विद्वानों मे मतैक्य नहीं है फिर भी इस दिशा में एक रुपता लाने के प्रयास विद्वानों द्वारा समय-समय पर अवश्य हुए हैं। विद्वानों का इस दिशा में किया गया यह प्रयास ही संस्कारों को सुनियोजित एवं व्यावहारिक मूल्य प्रदान कर सका है। वर्तमान में मुख्य संस्कारों की संख्या कुछ नाम भेद के साथ 16 बताई गई हैं, जैसे-गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, चूड़ाकरण, अन्नप्राशन, कर्णवेध, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाह एवं अन्त्येष्टि-श्राद्ध। इन षोडश संस्कारों में कुछ संस्कार आज भी भारतीय जनमानस में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए हैं। जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णवेध, उपनयन, विवाह एवं अंत्येष्टि-श्राद्ध आदि संस्कारों में से उपनयन एवं विवाह संस्कार का सामाजिक जीवन के लिए तो महत्व अधिक है, परंतु इसके पीछे धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्य का अभाव दृष्टिगोचर होता है। मृत्यु अथवा अन्त्येष्टि संबंधी संस्कार के पीछे धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्य की प्रधानता होती है। अतः यह कहा जा सकता है कि संस्कार संबंधी क्रियाओं को स्वीकार करने के पीछे भारतीय जनमानस में धार्मिक संचेतना के साथ-साथ आध्यात्मिक एवं सामाजिक मूल्य की पृष्ठ भूमि भी गतिमान रही है। अतः हमें यह स्वीकार करने में कोई संशय नहीं रह जाता है कि आज भी संस्कार पहले की भांति धार्मिक एवं सामाजिक धरातल पर अपना अस्तित्व बनाए हुए है।

व्यक्ति के जीवन की संपूर्ण शुभ तथा अशुभवृत्ति उसके संस्कारों के अधीन है। इनमें से कुछ संस्कार तो जातक अपने पूर्वभव के साथ लाता है तथा कुछ को वर्तमान जीवन की परिस्थितियों के वशीभूत होकर प्राप्त करता है एवं कुछ संस्कार उसकी मृत्यु के बाद भी कार्यरत रहते हैं। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि संस्कार पूर्वभव, वर्तमान जीवन एवं मृत्यु के पश्चात् भी गतिशील रहते हैं, जिनका मानव जीवन में अपना महत्व एवं मूल्य बना हुआ है। भारतीय संस्कृति में तीन प्रकार के शरीरों का वर्णन हुआ है-सूक्ष्म शरीर, स्थूल शरीर एवं कारण या लिंग शरीर। इनमें स्थूल शरीर के द्वारा कृत कार्यों का समापन मृत्यु के उपरांत सूक्ष्म शरीर के द्वारा भी किया जाता है। तात्पर्य यह है कि सूक्ष्म शरीर प्राप्त होने पर भी स्थूल शरीर द्वारा कृतकर्म क्षय को प्राप्त नहीं होते तथा पुनः जन्म लेने के बाद सूक्ष्म शरीरस्थ संस्कारों को व्यक्ति अपने क्रिया क्षेत्र में लाता है। क्योंकि प्रकृति के सूक्ष्म तत्वों से सभी प्रकार के शरीर बनते हैं, जो स्वरूपतः भौतिक हैं। अतः भौतिक पदार्थों से निर्मित शरीर को भैतिक सुखों की आवश्यकता होती है। सूक्ष्म शरीर द्वारा किए गए कार्यों का संबंध स्थूल शरीर से होता है, जो हमारे मस्तिष्क में तथा स्थूल शरीर में व्याप्त हो जाते हैं, जो कि अन्य जन्मांतरों में साथ-साथ होने के कारण स्थूलशरीर द्वारा भोगे जाते हैं। सूक्ष्मशरीर की सत्ता का प्रमाण शास्त्रों में बहुधा प्राप्त होता है तथा बिना स्थूलशरीर के हम सब कुछ जान लेते हैं। उदाहरण स्वरूप जैसे नासिका के सामने कोई पुष्प लाया जाए तथा घ्राणेन्द्रिय का निरोध करके कान से यदि हम सूंघने का प्रयास करते हैं, तो कान रूपी इंद्रिय उस पुष्प की सुगंध को ग्रहण नहीं कर सकती। योगी लोग सूक्ष्म शरीर के स्थूल शरीर से पृथक कर सकते हैं तथा पुनः नए शरीर में भी प्रवेश कर सकते हैं। इस प्रकार वह स्वभावतः संस्कारों के भी बदल देते हैं। संस्कृत साहित्य में संस्कारों से संबद्ध परंपराओं एवं मान्यताओं का यथा स्थान विवेचन हुआ है, जिनसे यह संकेत मिलता है कि इस संसार में लौकिक एवं अलौकिक शक्तियां हैं, जिनके मध्य अटूट संबंध है, जो मानव जीवन को एक प्रेरणा प्रदान करता हैं। संस्कार यहां एक प्रेरकतत्व के रूप में विकसित हुआ है, जो मनुष्य को कई प्रकार की लौकिक एवं अलौकिक शक्तियों से युक्तकर उसके जीवन में सुख-शांति का आधान करता है। संस्कार जीवन के विभिन्न अवसरों पर संपन्न एवं आयोजित किए जाते हैं। तद्नुसार ये अवसर एवं जीवन को महत्व एवं पवित्रता प्रदान करते हैं। संस्कार कदाचित् जीवन की घटनाओं के प्रति मनुष्य के भीतर व्याप्त उदासीनता को कम करने की प्रेरणा प्रदानकर जीवन के विकास के क्रम को महत्व प्रदान करउसे एक सामाजिक मूल्य प्रदान करते हैं। मनुष्य को इस बात का बोध हो जाता है कि जीवन की घटनाएं मात्र शारीरिक क्रियाओं का नाम नहीं अपितु एक चिरंतन प्रवाह है, जिनमें सामाजिक संचेतना है, आध्यात्मिक उत्क्रांति है तथा सांस्कृतिक मूल्य के संरक्षण का भाव है।

व्यक्ति के जीवन की संपूर्ण शुभ तथा अशुभवृत्ति उसके संस्कारों के अधीन है। इनमें से कुछ संस्कार तो जातक अपने पूर्वभव के साथ लाता है तथा कुछ को वर्तमान जीवन की परिस्थितियों के वशीभूत होकर प्राप्त करता है एवं कुछ संस्कार उसकी मृत्यु के बाद भी कार्यरत रहते हैं।

बोधकथा

ज्ञान कक्षा का मोहताज नहीं

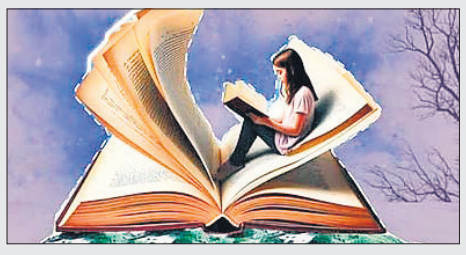

एक समय की बात है, एक विद्यार्थी पढ़ाई में अत्यंत होशियार माना जाता था। उसकी लगन और समझदारी की चर्चा पूरे विद्यालय में थी, लेकिन अचानक वह एक गंभीर बीमारी की चपेट में आ गया। कई दिनों तक बिस्तर पर रहने के कारण उसकी विद्यालय में उपस्थिति बहुत कम हो गई। स्थिति ऐसी बन गई कि वह परीक्षा में बैठने की शर्त भी पूरी न कर सका। यह बात उसके लिए अत्यंत चिंता का विषय बन गई। उसे लगने लगा कि अब एक साल पीछे रह जाना तय है। उसका मन घबराहट और निराशा से भर गया। अंततः अपने मन का बोझ हल्का करने के लिए वह प्रख्यात विद्वान और मार्गदर्शक मदन मोहन मालवीय जी के पास पहुंचा। विद्यार्थी ने कांपती आवाज में अपनी व्यथा रखी, "बाबूजी, मैं बीमारी के कारण परीक्षा में नहीं बैठ पाऊंगा। लगता है मुझे एक साल और उसी कक्षा में रहना पड़ेगा।" मालवीय जी बड़े ध्यान से उसकी बातें सुनते रहे। फिर अत्यंत शांति से बोले, "एक बात बताओ बेटा, पढ़ना अच्छी चीज है या बुरी?"

विद्यार्थी ने तुरंत उत्तर दिया, "अच्छी चीज है।" मालवीय जी मुस्कुराए और बोले, "तो फिर पढ़ने से डर कैसा? विद्यार्थी को दर्जे का, कक्षा का, साल का इन सबका विचार छोड़कर पूरे मन से सीखने पर ध्यान देना चाहिए। ये दर्जे तो मनुष्य ने अपने सुविधा के लिए बना दिए हैं, ज्ञान इन्हें नहीं मानता।" उनकी बात सुनकर भी विद्यार्थी का चेहरा उदास बना रहा। उसकी मायूसी देखकर मालवीय जी ने गहरी आवाज़ में समझाया, "मेरा विश्वास मानो, असली पढ़ाई स्कूल और कॉलेज की चार दीवारों में सीमित नहीं रहती। जिन्हें सचमुच पढ़ना होता है, वे हर परिस्थिति में सीखते हैं। विद्या पाने के लिए तपस्या करनी पड़ती है और यह तपस्या जीवनभर चलती है। दुनिया के अनुभव, परिस्थितियां, कष्ट- यही सबसे बड़े गुरुकुल हैं, जिसे सीखने की आग होती है, उसके लिए साल पीछे रह जाना कोई बाधा नहीं।" वे आगे बोले, "जीवन में हमें बहुत-सी बातें किताबों से नहीं, बल्कि परिस्थितियों से सीखने को मिलती हैं। बीमारी, कठिनाइयां, संघर्ष-ये सब भी शिक्षक हैं। इसलिए यदि तुम सचमुच विद्वान बनना चाहते हो, तो दर्जे की चिंता छोड़कर ज्ञान का पथ पकड़े रहो।" मालवीय जी के इन शब्दों ने विद्यार्थी के मन का बोझ हल्का कर दिया। उसे समझ आ गया कि पढ़ाई सिर्फ परीक्षा पास करने का साधन नहीं, बल्कि जीवन को सही दृष्टि देने वाली साधना है। वह नए उत्साह से भरकर वापस लौटा। सच यही है, जो सीखने वाला हृदय रखता है, उसके लिए हर दिन, हर अनुभव, हर संघर्ष एक नई पाठशाला बन जाता है। यही इस कथा का संदेश है।

-नृपेन्द्र अभिषेक नृप